बिहार में प्राथमिक शिक्षा: एक समीक्षा

विजय कुमार / किरण कुमारी

लड़कियों की शिक्षा में निवेश विकासशील देशों में उपलब्ध सबसे अधिक आमदनी देने वाला निवेश हो सकता है। —लारेंस एच. समर्स, उपाध्यक्ष, विश्व बैंक

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में तीसरी दुनिया के देशों में आजादी की एक लहर उठी। उसके फलस्वरूप इसी शताब्दी के मध्य में अधिकांश उपनिवेश साम्राज्यवाद के चंगुल से आजाद हुए। उपनिवेशिक राज्यों को यह उम्मीद थी कि जब गुलामी की बेड़ियां टूटेंगी तो उन्हें न केवल शोषण से स्वतंत्रता मिलेगी बल्कि उनकी आबादी को गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा और सामाजिक शोषण से भी मुक्ति मिलेगी। उन्हें यह पूर्ण विश्वास था कि वे अपने भविष्य का निर्माण स्वयं करेंगे। लेकिन यह विश्वास गलत साबित हुआ। आज 21वीं शताब्दी के जीरो माईल पर खड़े ये सारे विकासशील देश गरीबी, अशिक्षा और अन्याय निवारण की योजनाओं को पूरा कर उनकी सफलता का समारोह मनाने के बजाय विश्व बाजार की मुक्त नीति को कार्यान्वित करने में तल्लीन होकर उन्नत मूल्यों की



जीवनशैली प्राप्त करने में अपना समय, ऊर्जा और साधनों का उपयोग कर रहे हैं। शिक्षा के अभाव में भले ही इस आपाधापी में इन देशों की आबादी का एक छोटा हिस्सा पश्चिमी देशों का आर्थिक स्तर प्राप्त कर ले, लेकिन अधिकांश आबादी गरीबी की चपेट में और नीचे की ओर सरकती चली जाएगी। इस लेख में बिहार के परिप्रेक्ष्य में इसी तथ्य को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है कि कैसे जहां भारत के उन्नत राज्य अंतर्राष्ट्रीय मुक्त बाजार की तरफ बढ़ रहे हैं, बिहार के लोग शिक्षा के अभाव में गरीबी और वर्ग-संघर्ष/वर्ग अन्याय से जूझ रहे हैं।

विकास के विभिन्न प्रतिमानों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि विकास के लिए शिक्षा अनिवार्य है। निरक्षरता का प्रभाव बहुत गहरा और अक्सर जीवन के लिए खतरनाक हो सकता है। जहां शिक्षा की वंचना सामाजिक स्तर पर लोकतंत्र और सामाजिक प्रगति के लिए तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति और सुरक्षा के लिए हानिकारक है वहीं यह शिशु मृत्यु दर और प्रजनन दर से भी जुड़ी है। भारत के दक्षिणी राज्य केरल में सारी आबादी के साक्षर होने के कारण शिशु मृत्यु दर सभी विकासशील देशों में सबसे कम है और प्रजनन दर भारत में सबसे कम। शिक्षा से वंचित रहने पर लोगों की उत्पादक कार्य क्षमता, स्वयं को तथा अपने परिवार को संरक्षण और सहारा देने की क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। शिक्षा समाज की विषमताओं को जहां दूर करती है वहीं राष्ट्र को जोड़ने और विकास की प्रक्रिया को तीव्र करने का दुरूह कार्य भी करती है। शिक्षा से वंचित समाज को विश्व बाजार से जोड़ना देश, समाज और व्यक्ति तीनों के लिए घातक होगा क्योंकि वे नव-उपनिवेशवाद के शिकार हो जायेंगे।

भारत का बिहार राज्य एक विषमता मूलक हिंसाग्रस्त समाज है। यहां संपत्ति, सत्ता और शिक्षा तीनों साधनों का बंटवारा गैर बराबरी का है और शिक्षा की कमी समता-समानता पर आधारित समाज के निर्माण में बाधक है। सितंबर 1996 से दिसंबर 1996 के बीच हुए क्षेत्रीय सर्वेक्षणों के आधार पर तैयार किया गया *प्रारंभिक शिक्षा का जन प्रतिवेदन* (प्रोबरिपोर्ट) यह स्पष्ट करता है कि सरकार की मुफ्त प्रारंभिक शिक्षा नीति के बावजूद उत्तर भारत में माता-पिता को औसतन 318 रु. प्रति बच्चे, प्रति वर्ष सरकारी स्कूलों की शिक्षा पर व्यय करना पड़ता है। इस आधार पर बिहार में एक कृषक मजदूर को अपने तीन बच्चों को पढ़ाने के लिए 40 दिनों की मजदूरी खर्च करनी पड़ती है और वह भी एक घटिया स्तर की शिक्षा पर जो न तो बच्चों के लिए आनंददायी है और न ही जीवन के लिए उपयोगी। 1993 के एक सर्वेक्षण से यह जाहिर होता है कि बिहार 815 रु. प्रति वर्ष प्रति नामांकित विद्यार्थी पर खर्च करता है जो राष्ट्रीय औसत से 128 रु. ज्यादा है। फिर भी, बिहार के प्राथमिक स्कूल का पर्यावरण ऐसा है कि औसत 18 लाख छात्र और 11 लाख छात्राएं जो कक्षा I में प्रतिवर्ष नामांकित होते हैं उनमें से 7 लाख छात्र और 4 लाख छात्राएं पहले ही वर्ष स्कूल छोड़ देते हैं। दूसरे शब्दों में 36 प्रतिशत छात्र स्कूल से बाहर हो जाते हैं। यह संख्या 5वीं कक्षा तक पहुंचते-पहुंचते मात्र 7.5 लाख छात्रों और 3.8 लाख छात्राओं पर सिकुड़ जाती है।

बिहार शिक्षा परियोजना की 1995 की बेसलाइन सर्वेक्षण यह स्पष्ट करती है कि बिहार में प्रति स्कूल नामांकित दर मात्र 136 है जो केरल के औसत से काफी कम है। केरल में 30 प्रतिशत स्कूलों में 200 से 300 विद्यार्थी हैं और 35 प्रतिशत स्कूलों में 300 से ऊपर विद्यार्थी हैं। प्रति वर्ग विद्यार्थियों की संख्या बिहार में मात्र 27 है जो 5वीं तक पहुंचकर बहुत घट जाती है। औसत वर्ग संख्या कक्षा 1 में 38 है तो 5 में मात्र आधी। लड़कियों की संख्या तो और कम है। साथ ही साथ नामांकन और उपस्थिति का औसत भी भयावह है। इसी तरह का एक अन्य बेसलाइन सर्वेक्षण जो राज्य प्रारंभिक शिक्षा विकास कार्यक्रम (स्पीड) द्वारा 1997-98 में किया गया बिहार के छः जिलों यथा देवघर, गढ़वा, गिरिडीह, नालंदा, साहेबगंज (पाकुड़ सहित) तथा सहरसा के संदर्भ में चौंकाने वाले तथ्य प्रस्तुत करता है राज्य के इन सभी 6 इकाई जिलों में छात्रों और छात्राओं के नामांकन के बीच 25 प्रतिशत का अंतर है। 60 प्रतिशत से अधिक विद्यालयों में कुल नामांकन 150 से अधिक नहीं है। 32 प्रतिशत विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या 100 से भी कम है। उपस्थिति के आधार पर वर्ग 1 एवं वर्ग 5 का वर्ग आकार 21 और 7 पाया गया। ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में छीजन दर क्रमशः 66.45 प्रतिशत एवं 38.41 प्रतिशत है। विद्यालयों में भौतिक सुविधाओं का नितांत अभाव है तथा शिक्षक-छात्र का अनुपात 1:45 है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की रिपोर्ट 1999 यह स्वीकार करती है कि बिहार-उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल में शिक्षकों की संख्या ज्यादा है जबकि इन राज्यों में छीजन दर भी सबसे ज्यादा है। सबसे ज्यादा जनसंख्या घनत्व वाले राज्य केरल में प्राथमिक शिक्षकों की संख्या मात्र 45,899 है जबकि बिहार में 1,15,878. छीजन दर की राष्ट्रीय औसत को बढ़ाने का श्रेय बिहार जैसे राज्य को है। अभिप्राय यह है कि ज्यादा शिक्षक अच्छी शिक्षा की गारंटी नहीं है। शिक्षक-छात्र का अनुपात महत्वपूर्ण है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता, लेकिन शिक्षकों की राजनीतिकरण के कारण और गैर शैक्षणिक कार्यों में लगाने की वजह से शिक्षा का स्तर प्रभावित होता है—यह भी उतना ही सत्य है। यही कारण है कि शिक्षा के उपलब्धि स्तर में बिहार की स्थिति शर्मनाक है। अपने पुस्तकों से शब्द पढ़ना और उनका अर्थ बतलाना 60 प्रतिशत बच्चों के लिए मुश्किल है। गणित में भी उपलब्धि स्तर यही है कि 70 प्रतिशत छात्र 1 से 39 प्रतिशत स्कोर ही लिए गए परीक्षणों में प्राप्त कर सके। यहां तक कि शिक्षक जो पुस्तकें और पाठ पढ़ाते हैं उनकी पर्याप्त जानकारी नहीं रखते।

यही कारण है कि आज गांव-गांव में पब्लिक स्कूल पनप रहे हैं जो सरकारी स्कूलों की समानांतर प्रणाली के रूप में विकसित हो गए हैं। प्राथमिक स्कूलों में पढ़ाने वाले शिक्षक भी अपने बच्चों को इन अंग्रेजी स्कूलों में भेजते हैं। नतीजा यह होता है कि सरकारी स्कूलों की गुणवत्ता लगातार गिरती जा रही है। जब तक सार्वजनिक स्कूल प्रणाली सभी छात्रों के लिए समान नहीं होगी तब तक भारत में सौहार्द्र और बराबरी का रिश्ता स्थापित नहीं होगा। कोठारी आयोग ने भी यही कहा था और यही सत्य भी है।

यह ठीक है कि विश्व बैंक पोषित बिहार शिक्षा परियोजना और संयुक्त राष्ट्र एजेंसी (युनिसेफ, आई. एल.ओ., यू.एन.डी.पी., यू.एन.इ.एस.को. तथा यू.एन.

ए.पी.ए.) आस्ट्रेलिया तथा डच सरकार द्वारा सहायता प्राप्त राज्य प्रारंभिक शिक्षा विकास कार्यक्रम जैसी संस्थाएं अथक प्रयास में लगी हैं कि बिहार में प्राथमिक शिक्षा में सुधार हो और गुणवत्ता आए तथा 6-11 वर्ष की आयु के सभी बच्चे विद्यालय में नामांकित हो पाएं। लेकिन प्रशासनिक उदासीनता और समर्थन के अभाव में इन संस्थाओं के इनपुट (निवेश) फलीभूत नहीं हो पा रहे हैं। बिहार शिक्षा परियोजना ने शिक्षकों के सशक्तिकरण के लिए निरंतर प्रशिक्षण का प्रावधान कर रखा है और सामाजिक सहयोग प्राप्त करने के लिए ग्राम स्तर पर ग्राम शिक्षा समितियां बना रखी हैं। लेकिन इस संस्था को शैक्षिक वातावरण को नियंत्रित करने का कोई अधिकार नहीं है। प्रशासनिक अधिकारियों की उदासीनता और उपेक्षा, शिक्षक संघों के अनचाहे हस्तक्षेप और शिक्षकों की गैर शैक्षणिक कार्यों के लिए नियुक्तियों के फलस्वरूप अपेक्षित प्रतिफल प्राप्त नहीं हो पा रहे हैं।

इस बीच शिक्षा के अभाव में ग्रामीण क्षेत्र जातिगत लड़ाइयों के कुरुक्षेत्र बन गये हैं। अपार संख्या में ग्रामीण विवादों के कारण विस्थापन हो रहा है। लोग शहरों की तरफ और दूसरे राज्यों की तरफ भाग रहे हैं। पारंपरिक व्यवसाय और व्यापार लुप्त हो रहे हैं। अशिक्षा और गरीबी के कारण उनमें नवीनीकरण का अभाव है और खेती पर अभी भी निर्भरता बरकरार है। लाखों बच्चे शिक्षा के अभाव में बाल-मजदूरी कर रहे हैं। उनका भविष्य उत्पीड़न और बदहाली भरा है। जब वह अपने इर्द गिर्द के समाज में सुरक्षित नहीं हैं तो कैसे यह आशा की जा सकती है कि अर्थतंत्र में वह सुरक्षित रहेंगे। ऐसी स्थिति में भूमंडलीकरण और विश्व बाजार की रणनीति के लिए बिहार स्पष्ट रूप से तैयार नहीं है। इस राज्य की जनता का मुक्त बाजार में उत्पीड़न ही होगा क्योंकि यहां के लोग ज्यादातर मजदूरी का ही काम कर पायेंगे। उनका स्थान मुक्त बाजार के हाशिये पर होगा जहां वह उसे प्रभावित करने के बजाय स्वयं ही प्रभावित होंगे।

प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनिकरण के दूरगामी प्रभाव अत्यंत ही महत्वपूर्ण हैं। इसलिए इसकी महत्ता को अनदेखा नहीं किया जा सकता। आनंददायी वातावरण में अगर शिक्षा दी जाती है तो बच्चों में आगे बढ़ने की ललक पैदा होती है, सृजनात्मक रूचि बढ़ती है, साथ पढ़ने वाले बच्चों के भेदभाव दूर होते हैं, सामाजिक मूल्यों को वहन करने का भाव पैदा होता है, परिवार समाज और राष्ट्र के प्रति प्रेम बढ़ता है। इसकी वंचना सामाजिक उदासीनता और विघटन की प्रवृत्ति पैदा करती है। आज बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त हिंसा का एक बड़ा कारण अशिक्षा है। प्राथमिक शिक्षा को आज भी एक अधिकार के रूप में मान्यता नहीं मिल पाई है, यह एक दुखद स्थिति है। लेकिन बिहार की परिस्थितियों में ज्यादा दुखद यह है कि पर्याप्त संख्या में संस्थाएं होते हुए भी उनका सही सदुपयोग नहीं है। एक ऐसे साधनहीन समाज में जहां की ६० प्रतिशत जनता गरीबी रेखा के नीचे है उपलब्ध संसाधनों का यह दुरुपयोग समाज के साथ अन्याय है।